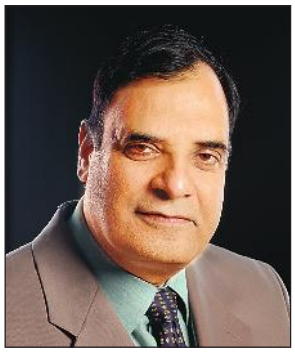

आलोक मेहता

सलाहकार संपादक

बदला आचार, विचार, प्रचार

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और भारतीय जनसंघ के पितामह माने जाने वाले पं. दीनदयाल उपाध्याय 1963 में उत्तर प्रदेश के जौनपुर लोकसभा क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे थे। संघ के वरिष्ठ साथी और उनके मित्र यादव राव देशमुख ने सलाह दी - 'पंडितजी, चुनावी सभाओं में भाषण कुछ अधिक आक्रामक होने चाहिए। प्रतिपक्ष पर तीखा प्रहार किए बिना चुनाव अभियान में रंग नहीं चढ़ पाएगा। मतदाताओं पर शिक्षात्मक एवं रचनात्मक भाषणों का प्रभाव नहीं पड़ता।' दीनदयाल उपाध्याय ने उत्तर दिया, 'देखिए, ऐसा लगता है कि मेरा प्रभाव नहीं पड़ेगा तो मैं चुनाव से हट जाता हूं। लेकिन वोट पाने के लिए मैं अपने भाषणों में अनावश्यक तीखापन नहीं ला सकूंगा। विरोधियों की व्यक्तिगत आलोचना करना मैं अनैतिक मानता हूं।' इसी क्रम में जनसंघ के कुछ नेताओं ने राय दी, 'कांग्रेस ठाकुरवाद चला रही है तो हम ब्राह्मणवाद चला दें। इसमें क्या हानि है? चुनाव युद्ध में सभी कुछ क्षम्य होता है।' उनकी बात सुनकर दीनदयाल उपाध्याय क्रोधित हो गए और ऊंची आवाज में बोले, 'सिद्धांत की बलि चढ़ाकर जातिवाद के सहारे मिलने वाली विजय पराजय से भी बुरी है। ऐसी विजय हमें नही चाहिए। एक चुनाव में जीतने के लिए हमने जातिवाद का सहारा लिया तो वह भूत सदा के लिए हम पर सवार हो जाएगा और फिर कांग्रेस तथा जनसंघ में कोई अंतर नहीं रहेगा।'

जोड़-तोड़ नहीं करने तथा अपने आदर्शों पर अडिग रहने से जौनपुर का वह चुनाव पं. दीनदयाल उपाध्याय नहीं जीत सके। लेकिन भारतीय राजनीति में उनका नाम सदा आदर के साथ लिया जाता रहा। राजनीतिक विरोधियों के प्रति सम्मान का भाव जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, लालबहादुर शास्त्री, जयप्रकाश नारायण, भूपेश गुप्त, सोमनाथ चटर्जी, अटल बिहारी वाजपेयी, इंदिरा गांधी, चंद्रशेखर, नरसिंह राव जैसे अनेक नेताओं के राजनीतिक जीवन में देखने को मिलता रहा, लेकिन हाल के वर्षों में विचारधाराओं के अवमूल्यन के साथ विभिन्न पार्टियों के नेताओं के आचार-विचार बदल गए हैं। इस बार के लोक सभा चुनाव में स्थिति बदतर होती दिखाई दे रही है। संघ तथा जनसंघ से उपजी भारतीय जनता पार्टी हो अथवा गांधी-नेहरू की परंपरा वाली कांग्रेस पार्टी या जयप्रकाश नारायण के आंदोलन से निकली पार्टियां - सबके नेता प्रतिद्वंदियों के विरुद्ध तीखे से तीखे शब्दों का उपयोग करने में नहीं चूकते। आम आदमी पार्टी के अरविन्द केजरीवाल तथा उनके कुछ साथी तो जंगल में हिंसक हथियारों से लैस माओवादियों के जहरीले तीरों की तरह विरोधियों के चरित्र हनन में लगे हुए हैं। राजनीतिक हिंसा की पराकाष्ठा संपूर्ण लोकतंत्र के लिए क्या घातक सिद्ध नहीं होगी?

भारतीय राजनीति में उनका नाम सदा आदर के साथ लिया जाता रहा। राजनीतिक विरोधियों के प्रति सम्मान का भाव जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, लालबहादुर शास्त्री, जयप्रकाश नारायण, भूपेश गुप्त, सोमनाथ चटर्जी, अटल बिहारी वाजपेयी, इंदिरा गांधी, चंद्रशेखर, नरसिंह राव जैसे अनेक नेताओं के राजनीतिक जीवन में देखने को मिलता रहा, लेकिन हाल के वर्षों में विचारधाराओं के अवमूल्यन के साथ विभिन्न पार्टियों के नेताओं के आचार-विचार बदल गए हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि अब न तो समाजवादी समाज के सिद्धांत पर आधारित चुनावी घोषणा-पत्र होते हैं और न ही हिन्दू राष्ट्रवाद या कट्टर मार्क्सवादी विचारों वाले चुनावी अभियान चल रहे हैं। घोषणा-पत्र बनाने वालों को मात्र 'दस्तावेज' तैयार करने का दायित्व सौंपा जाता है। पुराने-नए वायदों को संतुलित भाषा में लपेटकर परोस दिया जाता है। लिखने और पढ़ने वाले जानते हैं कि यह सपनों की पतंग है। चुनाव के बाद किस दिशा में कहां उड़ जाएगी - कोई नहीं जानता। जनता कुछ बड़े वायदे याद रख सकती है। लेकिन सत्ताधारी से जवाब मांगने की स्थिति में नहीं रहती। हां, महानगरों से सुदूर गांवों तक के मतदाताओं के बीच घोषणाओं, वायदों, भाषणों की विश्वसनीयता लगभग खत्म हो गई है। यही कारण है कि अब विचारों से जुड़े राजनीतिक कार्यकर्ता कम और व्यक्ति, पद अथवा पारिश्रमिक से जुड़े अधिक लोग पार्टी तथा चुनाव में सक्रिय दिखाई देते हैं। चुनाव आयोग तथा न्यायालयों द्वारा तय लक्ष्मण रेखाओं को लांघने के रास्ते राजनीतिक नेता या उनके समर्थक स्वार्थी तत्व निकाल लेते हैं। चुनाव में पहले जाति, धर्म, धन, पद के आधार पर दल तथा निष्ठा बदल कर खुला खेल दिखने लगा है। चुनावी बेला में सारे दरवाजे-खिड़कियां खोलकर भ्रष्टाचार या अपराधों के आरोपों से घिरे व्यक्तियों को 'आदर' सहित अपनाने में किसी दल को कोई परहेज नहीं है।

यही स्थिति प्रचार-तंत्र की है। चुनावी खर्च की सीमाओं के बावजूद प्रचार के हर हथकंडे का इस्तेमाल किया जा रहा है। पोस्टर, पर्चे, अखबार, टीवी, इंटरनेट, मोबाइल, फेसबुक, ट्विटर पर होड़ लगी हुई है। मतदाता को भ्रमित करने में कोई कसर नहीं छोड़ जा रही। फिर भी मतदाता अधिक समझदार होता जा रहा है। निर्धन और निरक्षर मतदाता बहुत हद तक अपना हित-अहित समझने लगा है। इसे लोकतंत्र का दुर्भाग्य कहा जाएगा कि प्रभावशाली राजनीतिक तंत्र समाचार माध्यम (मीडिया) के एक वर्ग को भी भ्रष्ट एवं दिशाहीन बनाने लगा है। भारतीय प्रेस परिषद, एडीटर्स गिल्ड, ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन की आचार संहिताओं का उल्लंघन करने वालों को दंडित करने का कोई रास्ता अब तक नहीं निकला है। चुनाव आयोग निगरानी रखकर केवल दोषी पाए जाने वाले उम्मीदवार के विरुद्ध कार्रवाई कर सकता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को घृणित दुरुपयोग पर अब तक गंभीर अपराध की तरह कठोर दंड की व्यवस्था नहीं हो सकी है। बहरहाल, लोकतंत्र के पुनीत युद्ध में कहीं आग, कहीं धुआं, कहीं दानव, कहीं देवता और बड़ी संख्याओं में भोले-भाले भक्त मतदाता दिखते रहना स्वाभाविक है। निराशा के बजाय वोट के बल पर व्यवस्था तथा समाज में बदलाव की उम्मीद बनी रहेगी।

alokmehta7@hotmail.com